ResearchGate

See discussions, stats, and author profiles for this publication at: https://www.researchgate.net/publication/324167927

□□□□□□□□□□ □□ □□□□□□ . □□□□ □□□□

Research · January 2017

CITATIONS
0

READS
2

1 author:

Bhagawati Paraksh Sharma
Pacific University India

268 PUBLICATIONS **0** CITATIONS

SEE PROFILE

All content following this page was uploaded by Bhagawati Paraksh Sharma on 03 April 2018.

The user has requested enhancement of the downloaded file.

हिन्दुत्व की पहचान
समरस समाज

डा. भगवती प्रकाश शर्मा

भूमिका

भारत अनादिकाल से ऊँच–नीच, भेद–भाव व अस्पृश्यता रहित समरस राष्ट्र रहा है। अरबों के आक्रमण, मुगलों के आधिपत्य व ब्रिटिश राज के अन्तर्गत उपजी भेद–भाव व अस्पृश्यता की विकृति भी अब धीरे–धीरे देश में विरल होती जा रही है। एक हजार वर्ष पूर्व अभिनव गुप्त से लेकर आज तक अनेक मनीषियों ने देश से अस्पृश्यता को समाप्त करने के अथक प्रयास किए हैं। तब भी समाज में कभी–कभी यह चर्चा चल पड़ती है कि हिन्दू समाज में अस्पृश्यता कहीं अनादिकाल से तो नहीं रही है? इस भ्रांति को निर्मूल करने के लिए ही इस लघु पुस्तिका में हिन्दुत्व में जो समरसता व प्राणीमात्र के प्रति मित्र भाव का ही निर्देश किया गया है, उस विषय का विवेचन किया गया है। प्राचीन हिन्दू वांग्मय में अनेक स्थानों पर यही समरसता प्रकट होती है। हिन्दू वांग्मय में समरसता के ऐसे ही उद्धरणों का इस पुस्तक में विवेचन किया गया है।

उदयपुर
√ 2073, पौष शुक्ल 3
रविवार, जनवरी 1, 2017

भगवती प्रकाश
bpsharma131@yahoo.co.in

हिन्दुत्व : जीव मात्र के कल्याण का दर्शन

हिन्दुत्व का चिन्तन समता मूलक व समरसता का प्रेरक है। आज के जातीय विभेद, ऊँच–नीच भेदभाव व अस्पृष्यता आदि का हमारे मौलिक चिन्तन में कोई स्थान नहीं रहा है। हिन्दुत्व की अवधारणा सर्व जन हिताय, सर्वजन सुखाय के अनुरूप 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे व्यापक जन कल्याण के उपनिषद वाक्यों के अनुरूप है। इसमें मानव ही नहीं जीव मात्र के त्रिविध कष्टों से निवृत्ति के साथ उसके योगक्षेम में, इस प्रकार अभिवृद्धि का निर्देश है, जिससे सम्पूर्ण जीव सृष्टि व पर्यावरण में भी सुस्थिर सामंजस्य रहे। यहाँ मानव मात्र के त्रिविध कष्टों से अभिप्राय समस्त मानव को शारीरिक, दैविक (प्रकृति या परिवेश जन्य) और भौतिक साधनों के अभाव जन्य कष्टों से मुक्ति व मानव मात्र के **योगक्षेम** से है, जो रामचरित मानस में इन शब्दों में व्यक्त है : ''दैहिक दैविक भौतिक तापा राम राज काहूहि नहीं व्यापा''। योगक्षेम में योग से आशय है अप्राप्त की प्राप्ति (जो अबतक प्राप्त नहीं हुआ है उसकी प्राप्ति) एवं क्षेम का अर्थ है, जो प्राप्त हो गया, उसकी सुरक्षा। यहाँ पर योगक्षेम से आशय भी सम्पूर्ण समाज के न्यायोचित योगक्षेम से है। अमर्यादित उपभोग योगक्षेम नहीं कहा जा सकता है। जितने न्यूनतम वैयक्तिक उपभोग से विश्व के सभी व्यक्तियों की न्यायोचित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति बिना जीव सृष्टि के अन्य घटकों को उद्वेग दिये बिना सुदीर्घ काल तक चल सके वही विकास है। अर्थात यह संयमित उपभोग के विचार पर आधारित है। इसीलिये श्री मद्भागवत पुराण में कहा है कि_**''यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं ही देहिनाम। अधिक योऽभिमन्येत स स्तेन दण्डंऽर्हति।।'' अर्थात जितने उपभोग से व्यक्ति की उदर पूर्ति हो जाये या उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये उतने पर ही उसका अधिकार है, उससे अधिक पर अपना अधिकार जताने वाला व्यक्ति चोर है, जो दण्डित किये जाने का पात्र होता है।** इसी कारण हिन्दू जीवन पद्धति में दैनिक बलिवेष्वदेव में विधान है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा अर्जित संसाधनों (व उपभोग्य सामग्रियों) से चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी, कौआ, कबूतर आदि पखेरूओं, गौ व श्वान सहित सभी चौपायों सहित अभ्यागतों (कुछ भी प्राप्ति की आशा से उसके पास आने वाले मनुष्यों) के समग्र पोषण व उनकी आवश्यकताओं की अधिकतम सम्भव पूर्ति हेतु अपनी पूरी क्षमता से सहयोग करे।

हिन्दुत्व का विचार : ऊंच–नीच, अस्पृश्यता व छूआछूत रहित समरस समाज :

हिन्दू जीवन पद्धति व दर्शन में जीव मात्र में एक ही परमात्मा का निवास मानकर सब जीवों मात्र के कल्याण में रत रहने का निर्देश है। यथा गीता में कहा है – मुझ परमात्मा को वे ही प्राप्त करते है जो समस्त जीवों के हित में संलग्न रहते हैं।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। अ. 12 श्लोक श्रीमद् भगवद्गीता।

इसी प्रकार ईशावास्योपनिषद के अनुसार समग्र ब्रह्माण्ड को एकमेव परमात्मा से ही परिव्याप्त देखने का निर्देश है, जहाँ ऊँच–नीच, भेदभाव व छूआछूत या अस्पृश्यता का कोई स्थान नहीं वरन यह महा पाप माना गया है। वस्तुतः अरबों के आक्रमण के बाद एवं उनके बाद मुगल शासन व अग्रेजों के औपनिवेशिक राज्य के अधीन देश में फैली ऊँच–नीच, भेद भाव व अस्पृश्यता का हिन्दू जीवन पद्धति में कोई स्थान नहीं था। अरब आक्रान्ताओं द्वारा बड़ी संख्या में ऐसे हिन्दू परिवारों को इस्लाम कबूलने को बाध्य करने हेतु उन पर असह्य 'जजिया' नामक कर (टेक्स) लगाने, दासों से भी अधिक यन्त्रणापूर्ण जीवन जीने को बाध्य करने और मैला उठाने सहित सभी प्रकार की अवमानना व अपमान जनक कार्य थोपे। मुगलों के काल में उसमें और भी वृद्धि हुयी। इससे देश में करोड़ों लोगों को इस्लाम भी कबूलना पड़ा। अन्यथा प्राचीन हिन्दू वाग्मय (धर्मशास्त्रों) में मानव ही नहीं पशु–पक्षी व वनस्पति पर्यन्त प्राणी मात्र के प्रति करूणा एवं अपने जैसा सभी को मानने का आग्रह रहा है।

अक्सर कभी–कभी कुछ विद्वान हिन्दू समाज की समीक्षा या समालोचना करते हुये इसे अवर्ण–सवर्ण में बाँट देते हैं। हिन्दुत्व जिसका मूलाधार है– **'वसुधैव कुटुम्बकम'** (सम्पूर्ण पृथ्वीवासी एक परिवार का अंग हैं) और आत्मवत् सर्वभूतेषु (अपने जैसा सभी प्राणी मात्र अर्थात मनुष्य पशु–पक्षी व वनस्पति जगत को अपने जैसा मानकर, सबके प्रति करूणा व अपनत्व का भाव रखना) वहाँ मानव मात्र में भेद सर्वथा निषिद्ध व निन्दनीय है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्राणी मात्र में एक ही परमात्मा को देखना और कष्ट में पड़े प्राणियों को साक्षात परमात्मा के रूप में मानकर उनकी सब प्रकार से सेवा करना, सबसे बड़ा धर्म बतलाया गया है। इस विषय को यहाँ विस्तार से न लेकर एक भ्रान्ति को यहाँ निर्मूल करना आवश्यक है कि प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में कहीं अवर्ण–सवर्ण में भेद व शूद्रों की हेयता दर्शाने वाले वाक्य हैं।

भेद भाव रहित समाज :

मूल हिन्दू चिन्तन में ऊंच–नीच का कोई स्थान नहीं है। प्राचीन काल में शूद्र वर्ण उत्पादक वर्ग रहा है।

शूद्र शब्द क्षुद्र से नहीं बना है : सबसे प्रथम आक्षेप यह है कि शूद्र शब्द 'क्षुद्र' शब्द से बना है। यह सर्वथा तथ्यों से परे है। शूद्र शब्द हेय नहीं है और यह क्षुद्र से नहीं बना है।

अथर्ववेद में अपने श्रम के स्वेद (पसीने) से विविध उत्पादकीय कार्य में रत वर्ग को शूद्र कहा गया है। अर्थात परिश्रम पूर्वक विविध प्रकार की मूल्यवान वस्तुओं के उत्पादन में रत रहने वाले वर्ग को शूद्र कहा गया है। यथा शूद्र शब्द का निर्वचन निम्नानुसार है :–

श्रमस्य स्वेदेन उत्पादन रत एव शूद्रः

अर्थात अपने परिश्रम के पसीने से सब प्रकार की मूल्यवान वस्तुयें उत्पादित करने वाला शूद्र है। इसीलिये भारत पर हुये बाहरी आक्रमणों के पूर्व, अपने उत्पादन कार्यों के प्रतिफल के फलस्वरूप शूद्र का समाज में आर्थिक व सामाजिक स्थान अत्यन्त उच्च रहा है। **इसीलिये कामन्दक नीतिसार में कहा है कि** राजा को नया नगर बसाते समय पर शूद्र, जो विभिन्न मूल्यवान वस्तुयें उत्पादित करते हैं उन्हें व वैश्य, जो उन वस्तुओं के व्यापार से आय उत्पन्न करके राजस्व बढ़ाते हैं, उन्हें अधिक संख्या में बसाना चाहिये। इस नीति ग्रन्थ में यहाँ तक कहा गया है कि ब्राह्मण व क्षत्रिय राज्योपजीवी हैं, उन्हें राज्य को जीविका व भृत्ति (वेतन आदि) देनी होती है। इसलिये उनकी संख्या परिमित रखनी चाहिये। चूंकि मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करने वाला यह वर्ग सर्वत्र फैला हुआ था और वह इस प्रकार के उत्पादन कार्य में संसाधन भी लगाने होते थे, इसलिये ही ऋग्वेद में ''परिवार की उत्पादकीय सम्पत्ति या

उत्पादन कार्य में लगी सम्पत्ति को पूंजी कहा है।'' आज की पूंजी की आधुनिक परिभाषा में ''पूंजी मानव द्वारा उत्पादित, उत्पादन के साधनों'' को कहा जाता है। इसमें परिवार का उल्लेख नहीं है। चूंकि ब्राह्मण को भिक्षा वृत्ति से ही जीवन यापन करना होता था। क्षत्रिय अर्थात क्षतात रक्षति इति क्षत्रिय (समाज को क्षति अर्थात अन्यायपूर्ण हिंसा से बचाये वह क्षत्रिय) को राजकोष से भृत्ति या वेतन मिलता था। सारी मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करना शूद्र का ही कार्य था। सीसा जस्ता, ताम्बा सोना आदि धातुओं के उत्पादन उनसे विविध उपकरणों, बर्तन आदि का निर्माण, भूगर्भ से रत्न आदि निकालना, नौकाओं से लेकर शतरित्र (सौ–सौ चप्पूओं वाले जलयानों का निर्माण) का निर्माण वस्त्रोत्पादन, आभूषणों का उत्पादन रथादि वाहनों का निर्माण चर्म उत्पादों, धात्विक उत्पादों आदि का उत्पादन सब कुछ शुद्र वर्ग के अधीन था। इसीलिये प्राचीन धर्म शास्त्रों में शूद्रों की उनकी उत्पादन कार्य के अनुसार उत्पादन सापेक्ष 1200 से अधिक जाति या शिल्प श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। ये सभी अपने श्रम से विविध मूल्यवान वस्तुओं के निर्माता या मूल्यवान सेवाओं के प्रदाता व राज्य की अर्थव्यवस्था के आधार थे। विदेशी आक्रमणों के दौर के पूर्व उनका समाज में आर्थिक वर्चस्व रहा है। अनेक श्रेणियों का यह उद्यम या पेशा तो ब्रिटिश शासन में छिना है, जब यूरोपीय उत्पादों को यहाँ राज्य प्रश्रय दिया जाने लगा व शिल्पियों के अंगूठे तक कटा देने जैसे प्रकरण बढ़े।

जातियाँ शिल्प श्रेणियों से बनी हैं :

सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान आरोह–अवरोह के क्रम में कार्य – विभाजन की उत्पत्ति हुई भी और कतिपय कलाओं एवं शिल्पकारों के उद्भव के कारण अनगिनत व्यवसायों पर आधारित बहुत–सी उपजातियों की सृष्टि होती चली गयी। इन जातियों में श्रेष्ठ या कनिष्ठ का भाव नहीं था। सूत शूद्र जाति है। लेकिन, सूत वंश परम्परा के लोग एक सहस्त्राब्दी से अधिक अवधि तक ऋषियों के पुराणों का उपदेश देते हैं।

वैदिक काल के अन्त होने के पूर्व 1200 से अधिक विविध शिल्प या उत्पाद या प्रदत्त सेवा के आधार पर आधारित जातियों का उद्भव हो चुका था। ये जातियाँ विभिन्न व्यवसायों एवं शिल्पों से सम्बन्धित थीं। इनकी श्रेष्टता या कनिष्ठता का प्राचीन काल में कोई भेद नहीं रहा है। वाजसनेयी संहिता, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण काठक संहिता (२७।२३), अथर्ववेद, ताण्ड्य ब्राह्मण **(३।४),** ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्य, बृहदारण्यकोपनिशद् व बौद्ध साहित्य के आधार पर एक छोटी सूची यहाँ दी जा रही है : –

● अजापाल (बकरी पालनेवाला) ● चर्मम्न (चर्म उत्पादों का उत्पादक) ● भीमल ● अन्ध्र ● चाण्डाल (अन्त्येष्ठी स्थलाधिपति) ● अयस्ताप ● अम्भक ● मणिकार ● अयोगु या आयोगु ● ज्याकार ● मागध ● तक्षा ● मार्गार ● अविपाल (भेड़पालक या गड़रिया) ● दाश ● मूतिब ● आन्द धनुष्कार ● मृयगु ● या मैनाल ● इशुकार ● धन्वाकार ● राजयित्री (रगेरेज) या ● रज्जसर्ग या सर्ज ● ड्ग्र ● धन्वकृत् ● रथकार ● कण्टककार या कण्टकीकारी ● धैवर ● राजपुत्र ● रेभ ● कर्मार ● निशाद ● वंशनर्ती ● वप (नाई) ● कितव ● पुंश्चलु ● विदलकारी या विदल ● व्रात्य ● किरात ● पूंजिष्ठ ● शबर ● कीनाश (खेतिहर) ● पुण्ड्र ● शाबल्य ● शैलूश ● कुलाल या कौलाल ● पुलिन्द ● स्वनी (श्वनित) ● केवर्त (नौकायन कार्य) ● पौल्कस ● संगृहीता ● कोशकारी (भाथी फूँकनेवाला) ● वैन्द (मछली पकड़ने वाला) ● सुराकार ● क्षत्ता ● सूत ● सेलग ● गोपाल (गुवाला) ● भिशक् ● हिरण्यकार

धर्मसूत्रों, प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों एवं मेगस्थनीज के अपूर्ण उद्धरणों से पता चलता है कि ईसा के कई शताब्दी पूर्व कतिपय शिल्प व व्यवसाय आधरित जातियाँ विद्यमान थीं। मेगस्थनीज वृतान्त का भ्रान्तिपूर्ण कह देते हैं, किन्तु उसके कथन को हम नहीं टाल सकते। उसके अनुसार भारत के जन सात मुख शिल्प आधारित जातियों में विभाजित थे – (1) दार्शनिक, (2) कृषक, (3) गोपाल एवं गड़रिया, (4) शिल्पकार, (5) सैनिक, (6) अवेक्षक तथा (7) सभासद एवं करग्राही। अध्यक्ष एवं अमात्य, भी सम्भवतः तब जातिसूचक हो गये होंगे जो पद व्यवसाय के परिचायक हैं। सम्भवतः ये पद वशंपरम्परागत थे, अतः मेगस्थनीज ने इन्हें प्रमुख जातियों में गिना होगा।

विकेन्द्रित व शिल्प श्रेणीशः या उत्पाद श्रेणीशः जाति विभाजन : शूद्र जातियों में विभाजित विशाल उत्पादक वर्ग अपने–अपने मूल्यवान उत्पादों के उत्पादन में रत होने से उस परम्परानुसार ऋग्वेद ने **परिवारों की उत्पादकीय सम्पत्ति को पूंजी की परिभाषा दी है।** इसके साथ ही यह भी कहा है कि, किसी भी स्थिति में राजा भी किसी परिवार को उसकी पूंजी (परिवार की उत्पादन में संलग्न सम्पत्ति) से पृथक नहीं कर सकता है। इसीलिये चाणक्य ने भी अर्थशास्त्र की परिभाषा पूर्ण रोजगार आधारित प्रतिपादित की है। **मनुष्याणां वृत्तिरर्थ** : उसमें भी शिल्प श्रेणी केन्द्रित स्वरोजगार पर ही बल दिया गया है। ऋग्वेद में शूद्रों द्वारा एक से अधिक स्थानों पर पूंजी का निवेश कर उत्पादन क्रियाओं के सम्पादन और उनसे लाभ अर्जित कर उसे कई गुना करने के भी कई श्लोक हैं। ऐसा ईष्ट साधन करने वाली शूद्र की उत्पादकीय सम्पत्ति अर्थात पूंजी को ही 'इष्टका' कहा गया है। ऐसा इष्ट साधन करने वाली पूंजी से उत्पादन लाभ–हानि निरपेक्ष हो कर सतत लाभ देने वाला हो जाने पर उसे 'घेनु' सदृश निर्बाध लाभार्जन कराने वाला कहा गया है। **यथा इमामेऽ अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दशं च दशं च शतं च शतं च।** इन्ही शूद्र वर्गों द्वारा दूर देश से वस्तु व्यवहार करने हेतु शतरित्र नामक जलयानों के निर्माण व उपयोग के भी वर्णन हैं। शतरित्र अर्थात 100 से अधिक चप्पुओं वाले जलयानों से उत्पादित वस्तुएँ लाने–ले जाने के कार्य में शूद्र व वैश्यों के ही सलंग्न होने के वर्णन प्राचीन वांग्मय में प्रचुरता में हैं। यथा, कामन्दक नीतिसार में लिखा है कि राजा को नगर बसाते समय शूद्र अधिक प्रमाण में बसाने चाहिये जो विविध मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वैश्य उन वस्तुओं का व्यापार कर राजा को कर (टैक्स) चुकाते हैं। इसलिये वैश्य भी अधिक संख्या में बसाने चाहिये। ब्राह्मण व क्षत्रिय राज्योपजीवी होते हैं। इसलिये उन्हें अल्प संख्या में बसाना चाहिये। द्वारिका में 7000 वर्ष प्राचीन व खम्भात में 12000 वर्ष प्राचीन बन्दरगाहों के अवशेष राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के सामुद्रिक पुरातात्विक इकाई द्वारा खोजे गए हैं। दोनों ही स्थानों पर प्रचुरता में हजारों की संख्या में उस काल के जलयानों के बड़े लंगर पानी में जलमग्न अवस्था में हैं।

वस्तुतः देश की 1200 से अधिक शिल्प सापेक्ष श्रेणियों या जातियों के श्रम के स्वेद (मेहनत का पसीना) से उत्पादित उत्कृष्ट व मूल्यवान उत्पादों के उत्पादन व व्यापार की सुदीर्घ परम्परावश ही 18वीं सदी तक भारत का सम्पूर्ण विश्व के विनिर्माणी उत्पादन (वर्ल्ड मैन्यूफेक्चरिंग) में 22 प्रतिशत का योगदान रहा है। ईस्वी वर्ष 1 से 1500 ईस्वी तक तो विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में भारत का 33 प्रतिशत योगदान था (देखें तालिका 1)। वर्तमान औद्योगिक देशों के संगठन OECD (Organisation for Economic Cooperation & Development) जो यूरोप, अमेरिका आदि 24 औद्योगिक देशों का संगठन है; उसके आग्रह करने पर ब्रिटिश आर्थिक इतिहास लेखक ''एंगस मेड्सिन'' ने खोज पूर्वक यह बात कही है। बेल्जियम की राजधानी, ब्रुसेल्स में स्थित OECD के मुख्यालय से एगंस मेड्डिसन की पुस्तक ''वर्ल्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री–ए–मिलेनियम पर्सपेक्टिव'' प्रकाशित हुयी है। उक्त पुस्तक के अनुसार 1700 ईस्वी तक और औररगजेब के आमानुषिक अत्याचारों के बाद भी विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में भारत का अंश 22 प्रतिशत था। यह देश के शिल्प कुशल उत्पादनरत शूद्रों के अति मूल्यवान उत्पादों का ही योगदान था जिससे कि भारत 1500 ईस्वी तक विश्व का क्रमांक एक की आर्थिक शक्ति बना रहा। यह स्थिति विगत 10,000 वर्षों से भी अधिक समय से रही है। इसका प्रमाण द्वारिका व खम्भात आदि अनेक स्थानों के प्राचीन बन्दरगाह हैं। द्वारिका व खम्भात में पुरातत्वविदों ने क्रमशः 9000 व 12000 पुराने बन्दरगाहों के अवशेष खोज निकाले हैं। दोनों ही स्थानों पर जहाजों के सहस्रदिक लंगर मिले हैं।

तालिका : शून्य ए.डी. से बीसवीं सदी तक विश्व अर्थव्यवस्था में भारत का स्थान

GDP (PPP) in millions of dollars

Country/ Region	1	1000	1500	1600	1700	1820	1990
Western Europe	14,433	10,925	44,183	65,602	81,213	159,851	367,466
Eastern Europe	1,956	2,600	6,696	9,289	11,393	24,906	50,163
Russia	1,560	2,840	8,458	11,426	16,196	37,678	83,646
USA	272	520	800	600	527	12,548	98,374
Total Latin America	2,240	4,560	7,288	3,763	6,346	14,921	27,311
Japan	1,200	3,188	7,700	9,620	15,390	20,739	5,393
China	26,820	26,550	61,800	96,000	82,800	228,600	189,740
India	33,750	33,750	60,500	74,250	90,750	111,417	134,882
World	105,402	120,379	248,445	331,562	371,428	694,598	1,110,951

ऋग्वेद में शतरित्र अर्थात बड़े जलयानों से समुद्र–पार दूर देशों से प्रचुर मात्रा में व्यापार की ऋचाएँ (मंत्र रूप में वर्णन) हैं। हाल ही में तमिलनाडु के काडूमनाल नामक स्थान पर 2500 वर्ष प्राचीन औद्योगिक नगर के अवशेष मिले हैं। वहाँ पर प्राचीन वस्त्रोद्योग, (Textile Industrial) रत्न प्रविधेयन (Gem Processing) स्पात उत्पादन (Steel Manufacturing) उद्योगों के अवशेष मिले हैं। स्पात व विशेष कर स्वल्प कार्बन युक्त स्पात (Low Carbon Steel) उत्पादन में प्रयुक्त विट्रीफाइड क्रुसीबल भी मिले हैं। आज हम कहते हैं कि यह विट्रीफाइड टाइलें (Vitrifed Tiles) व विट्रीफिकेशन तकनीक यूरोप में विकसित हुयी। लेकिन हमारे शूद्र जाति के उत्पादक कौशल विशेषज्ञ जो उस काल के उत्पादक थे, उनकी पारिवारिक सम्पत्ति जो उत्पादन में प्रयुक्त होती थी, वही ऋग्वेद के अनुसार पूंजी की श्रेणी में आती थी और यह 2 हजार वर्ष पूर्व अतीत की अनेक सहस्त्राब्दियों में भारत की प्राचीन समृद्धि का आधार रहा है।

उपरोक्त विवेचन से देश में उत्पादन की प्रचुरता एवं वह समग्र उत्पादन शिल्प–सापेक्ष शूद्र जातियों या श्रेणियों द्वारा ही किया जाना, और उसके आधार पर ही राजकोष से भी अधिक धन शूद्र जातियों के पास होता था। इसीलिये राज्य के अतिथियों का आतिथ्य भी महाभारतकाल में शूद्रों पर अवलम्बित था। महाभारत में शूद्र का धर्म अतिथियों के सत्कार व उनके भोजन–आवास आदि बता कर उन्हें अत्यन्त महत्व प्रदान किया है जिसका निम्न श्लोक में स्पष्ट कथन है।

सशूद्रः संशिततपा जितेन्द्रियः। सुश्रुर्तिथिं तपः संचिनुते महत्।। (महाभारत–अनुशासन पर्व)

एगंस मेड्सिन के अनुसार विश्व का एक तिहाई उत्पादन भारत में होने व हमारे प्राचीन वांग्मय के अनुसार समग्र उत्पादन का दायित्व शूद्रों के नियन्त्रण में होने से ही शूद्र राज्य की अर्थ व्यवस्था का भी प्राचीन काल में आधार होते थे। उसके कारण ही कामान्दक नीतिसार आदि धर्मशास्त्रों में राज्य में ऐसे उत्पादन आय से धनी शूद्रों को ही अधिक संख्या में रखे जाने की अनुशंसा की गयी है। कामन्दक नीतिसार में लिखा है कि राजा को नवीन नगर बसाते समय उसमें शूद्रों का अधिक संख्या में बसाना चाहिये, जो विविध मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वैश्य भी बड़ी संख्या में बसाने चाहिये, जो इन वस्तुओं के व्यापार के ऊपर राजकोष में कर चुकाते हैं। ब्राह्मण व क्षत्रिय राज्योपजीवी (अपने पारिश्रमिक आदि के लिये राज्य पर अवलम्बित) होते हैं। इसलिये इनकी संख्या कम रखनी चाहिये। इस प्रकार कामन्दक नीतिसार जैसे प्राचीन ग्रन्थ में उस काल में शूद्र को, उसके द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर अर्थ व्यवस्था का प्रमुख आधार माना गया है। इस आधार पर पुराणों के इस वचन की भी पुष्टि होती है कि शूद्रों के सर्वाधिक धनी होने के कारण उनकी मकान व भूमि के मापन का फीता या सूत्र स्वर्ण का हुआ करता था।

यहीं कारण है कि पुराणों व प्राचीन वास्तु ग्रन्थों आदि में शूद्र के भवन निर्माण आदि में प्रयुक्त, नापने वाला सूत्र, फीता या डोरी को स्वर्ण निमित तक होना बतलाया है। जबकि ब्राह्मण का कुशा नामक घास का, क्षत्रिय का मुंज की डोरी का, वैश्य का कपास का व शुद्र का सुवर्णमयी डोर का।

ब्राह्मणस्य सूत्र दर्भजं, मौजन्तु त क्षत्रियस्य।
कार्पासं च भवैद्वैष्ये, स्वर्णनिर्मितं शूद्रस्य सूत्रम्।।

इसे अतिशयोक्ति भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सारी लोक कथाओं में ब्राह्मण को निर्धन ही बतलाया गया है। क्षत्रिय को भी मित साधन वाला ही बतलाया जाता रहा है। अंग्रेजों द्वारा ब्रिटेन से लाये गए माल से ही देश के शूद्र के नाम से जाने वाले वर्ग का उद्यम चौपट हुआ है। वस्तुतः शूद्रों को अछूत तो 1574 ईस्वी (सम्वत 1631) में रामचरित मानस लिखे जाने के समय भी नहीं माना था। रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में तुलसीदासजी ने 441 वर्ष पूर्व 1574 ईस्वी में लिखे रामचरित मानस में व उससे अनेक सहस्त्राब्दियों पूर्व रचित बाल्मिकी रामायण में भी चारों वर्णों के लोगों द्वारा साथ–साथ जल भरने, स्नानादि के वर्णन हैं। यथा –

राज घाट बांधेऊ परम मनोहर। तहाँ निमज्जिउ वरण चारिउ नर।।

इसी प्रकार सूत जाति, जिन्हें स्व–उद्यम रत शूद्रों की जाति में गिना जाता रहा है, उन्हीं सूत जी को द्वापर युग के अन्त व कलि के प्रारम्भ में पुराणवेता कहा है, जो ऋषियों को पुराणों का ज्ञान देते रहे हैं। ऋषियों के सम्मुख सभी पुराणों का विवेचन सूत जी ही करते, पुराणों में यह बतलाया गया है। रामायण में सुमन्त दशरथ के, महाभारत में संजय व इसी प्रकार, हर वाल में सूत गण राजाओं के मंत्री तुल्य पारिवारिक सलाहकार हुआ ही करते थे। विवाह कर्म में दूल्हे का सूत्रधार, सलाहकार या यों कहें तो संरक्षक जैसी स्थिति में केवल नाई जाति का बन्धु ही होता आया है। द्रौपदी सैरिन्धी की भूमिका में राजा विराट की पत्नी की कर्मचारी होते हुये भी उनकी निकटतम सखी रही है।

वेदाध्ययन के सन्दर्भ में भी सबसे मुख्य आक्षेप या आरोप यही आता है कि वेदों में शूद्रों के वेदाध्ययन का निषेध है। यह सर्वथा असत्य है। चारों में से किसी भी वेद में शूद्रों के लिये वेदाध्ययन के निषेध का कोई श्लोक नहीं है। इसके विपरीत यजुर्वेद 26(2) मात्र में शूद्रों को भी वेदाध्ययन कराने का निर्देश है।

वेद में भी शूद्र को वेदाध्ययन का समान अधिकार : शूद्र किसी से हेय नहीं है। यह भ्रान्ति भी निर्मूल है कि वेदों में शूद्र को समान अधिकार नहीं दिये। यथा –

''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याज्या शूद्रायचार्याय च स्वाय चारण्याय।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयज्मे कामः समृद्धतामुपमादो नमतु।।'' यजुर्वेद अ. 26 मंत्र 2

अर्थ – मैंने (परमात्मा ने) जिस प्रकार यह वेद रूपी वाणी आपको (ऋषियों) को दी है, उसी प्रकार आप सभी इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सभी को पढ़ाओ। अपने परिवारों में (स्वाय) अरण्यों (वनों) में रहने वाले (च अरण्याय) आदि सभी को वेद पढ़ाओ। इस प्रकार वेदाध्ययन किसी के लिये निषिद्ध नहीं था।

प्राणी मात्र के प्रति भेदभाव रहित अपनत्व हिन्दुत्व की कसौटी :

हिन्दुत्व में मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र के प्रति अगाध सद्भाव का निर्देश है। अपने से भिन्न किसी मत मतान्तर वालों के प्रति भी हिंसा का निर्देश नहीं है। हाँ, ऐसे दुराचारियों से समाज की रक्षार्थ संनद्ध रखना अवश्य धर्म कहा गया है। प्राणी मात्र के प्रति इसी प्रकार के सद्भाव की वरूण से प्रार्थना की गयी है यथा –

ते दृहं मा मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानिसमीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानिसमीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥यजुर्वेद 36/18

भावार्थ : हे परमेश्वर! हम सम्पूर्ण प्राणियों में अपनी ही आत्मा को समाया हुआ देखें, किसी से द्वेष न करें और जिस प्रकार एकत्रित एक मित्र दूसरे मित्र का आदर करता है वैसे ही हम भी सदैव सभी प्राणियों का सत्कार करें।

सम्पूर्ण समाज आपस में परस्पर भेदभाव रहित व समरस व्यवहार करें, यह हमारे अथर्ववेद में स्पष्ट व असंदिग्ध निर्देश है। यथा

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि। सम्यंचेःग्निं सपर्य तारा नाभिमिकाभितः।। अथर्व. 3.30.06

भावार्थ : तुम्हारी जल शाला एक हो, अन्न का विभाजन साथ–साथ हो, एक ही जुए में तुम जुड़े हुए हो। जैसे पहिये के अरे ना में चारों ओर जुड़े होते हैं, वैसे ही तुम सब प्रजाजन मिलकर ज्ञान रूप प्रभु की पूजा करो।

वेदों व उपनिषदों के मानव मात्र की भलाई की भावना रखना, सब के हित को अपना हित समझकर तद्नुकूल आचरण करना धर्म कहा गया है। उपनिषदकार के शब्दों में :–

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत॥

अर्थात – इस संसार में सबकी सबके प्रति सद्भावना रहे। सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी आत्म–कल्याण को प्राप्त करें और किसी को दुःख न हो। यह शुभ कामनायें ही सद्जीवन का मूल है। इसमें प्राणी मात्र का हित समाया हुआ है।

इसी प्रकार सनातन धर्म या शाश्वत धर्म की अत्यन्त सरल शब्दों में हिन्दू धर्म ग्रन्थों में जो व्याख्या की है, वह मानवता के चिरकालीन सुख व सौहार्द का मार्गदर्शन है। उसके अनुसार पराया धन मिट्टी की तरह मान कर उसके प्रति लालायित होकर उसे हस्तगत करने का विचार नहीं करना। परस्त्री को माता की तरह देख कर मन में कभी दुर्भाव नहीं लाना और समस्त प्राणियों को अपने जैसा देखते हुये उनके प्रति करूणा (दया) का भाव रखना ही सनातन ध्यार्म कहा गया है। उसके प्रति यथा –

परदृव्येषु लोष्ठवत, परदारेषु मातृवत। आत्मवत सर्वभूतेषु एष सनातन धर्मः।।

जातियाँ उन्नत अर्थव्यवस्था का आधार : समग्र उत्पादन कार्य व उसकी प्रौद्योगिकी उत्पादन में रुचिशील शूद्रो के अधीन थी व व्यापार व वाणिज्य वैश्य वृत्ति में

रुचिवान व्यक्तियों के अधीन होता था। जिस अथर्ववेद में अपने श्रम के स्वेद (पसीने) से मूल्यवान वस्तुओं के उत्पादक को शूद्र नाम दिया है उसमें सारी उत्पादन प्रौद्योगिकी भी सूत्रबद्ध है। शब्दों के वैदिक निर्वचन तक में भी उत्पादन प्रौद्योगिकी के सूत्र हैं। **''यशद''** अर्थात जस्ता के उत्पादन में प्राचीन काल में (2000 वर्ष पूर्व और अति प्राचीन काल में भी) भारतवासी अति दक्ष थे। उदयपुर के दक्षिण में 40 कि.मी. दूर जावर की जस्ते की खानों में 5000 वर्ष पुराने जस्ते के खनन व परिद्रवण के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। अलवर के पास खेतड़ी में ऐसे ही ताम्बे के खनन व उत्पादन के अवशेष हैं।

उत्पादक उद्यमों में ब्राह्मणों व शूद्रों की पारस्परिकता का भी एक उदाहरण यहाँ पर उद्धृत कर देना आवश्यक है। जिसे प्राचीन ज्ञान–विज्ञान के आधार शब्दों के निर्वचन के शास्त्र में पाणिनी व यास्क आदि ब्राह्मणों ने लिपिबद्ध किया है। वस्तुतः सभी धातुओं का खनन खनिकों द्वारा, परिद्रवण परिद्रावकों द्वारा और उनसे वस्तु निर्माण कंसेरा आदि शूद्र जातियों अर्थात जो ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य से अलग थे वे करते थे। कांसे पीतल आदि मिश्रित धातुओं का कार्य कंसेरा वर्ग करता था। पीतल आदि मिश्र धातुओं के उत्पादन में जस्ता, यशद या जिंक का उपयोग होता है। प्राचीन काल में यशद उत्पादन का कार्य भारत में ही होता रहा है। यशद से देश को विगत 5000 वर्षों में अथाह धन प्राप्त होता रहा है। उदयपुर जिले में जावर नाम स्थान पर 5000 वर्श से भी पूर्व में जस्ते का परिद्रवण होता रहा है। जस्ते का परिद्रवण अत्यन्त जटिल व संवेदनशील होने से सम्पूर्ण विश्व के लिये जस्ते का उत्पादन प्राचीन काल में व मध्यकाल तक भारत ही करता रहा है। जस्ते का परिद्रवण 820 डिग्री सेण्टीग्रेड पर होता है और 910 डिग्री पर उसका आक्सीकरण हो जाता है और वह जिंक से जिंक (Zn) का आक्साइड (ZnO) अर्थात जिंक आक्साइड बन जाता है। प्राचीन भारतीय विद्वानों को विदित था कि ताम्र (कॉपर) अवकारक (Reducing agent) है। इसलिये, तब के यशद व मिश्रधातु कांसा, पीतल आदि के उद्यम में लगे शूद्र यशद परिद्रवण में यशद अयस्क (Zinc Ore) अर्थात खनिज यशद को नीचे से गरम कर ऊपर ताम्बे की पट्टिका से ढक देते थे। इससे यशद का आक्सीकरण नहीं होता था। इसीलिये जस्ते का नामकरण यशद किया गया। इसका अर्थ है ''ताम्रः यश प्रदायते इति यशदः''। चूंकि संस्कृत में प्रत्येक शब्द की गूढ़ अर्थ परक व्युत्पत्ति है उदाहरणतः ''मननात् त्रायते इति मन्त्रः'' जिसका अर्थ है 'मनन करने वाले की रक्षा करे वह मंत्र'। इसी प्रकार ''शं तनोतु इति शंकरः'' का अर्थ है संकटों का शमन या निवारण करें वह शंकर। यदि ठीक से समीक्षा करें तो सूर्य के जो पर्यायवाची शब्द हैं वे उसके होने वाली फ्यूजन फिशन आदि क्रियाओं के सूत्र हैं। ब्रह्म जानाति ते ब्राह्मणा ''ज्ञान को लिपि बद्ध करने वाला ब्राह्मण। इस प्रकार ताम्र की पट्टिका के अवकारक गुण (Reducing activity) को ध्यान में रख कर खनिज परिद्रावक व कंसेरा आदि अपने श्रम के स्वेद से मूल्यवान वस्तुओं का उत्पादक वर्ग इस प्रौद्योगिकी का उपयोग कर मूल्यवान यशद का उत्पादन करता था। उसी ज्ञान का संचय व संकलन ब्राह्मण वर्ग यथा पाणिनी व यास्क आदि उसे लिपिबद्ध करते थे वैश्य उसका व्यापार कर राजा को राजस्व चुकाता था और उस राजस्व से निर्मित राजकोष से ही राजा सेना आदि रख कर कानून व्यवस्था पूर्वक राज्य की बाह्य आक्रमण आदि से सुरक्षित रखता था। इसमें ऊंच–नीच, भेदभाव या अस्पृश्यता का कोई भाव नहीं होता था।

हमारे यहाँ विविध प्रकार की शासन प्रणालियां रहीं हैं, जिनका वर्णन प्रथम अध्याय में किया गया है। इनमें से साम्राज्य, राज्य, भोज्य, वैराज्य आदि कुछ शासन प्रणालियों का उल्लेख विगत अध्याय में किया है। उससे स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भूमण्डल पर धर्म मय संविधान का अनुसरण करते हुये विविध प्रकार की शासन व्यवस्था यें संचालित की जाती थीं। इनका तैत्तिरीयोपनिषद व कई ब्राह्मण ग्रन्थों और नीति ग्रन्थों में, उनके रचना काल की परम्पराओं के अनुरूप वर्णन हुआ है। तब भोज की श्रेणी में आने वाले लोक कल्याणकारी राजा से लेकर विराट की श्रेणी में आने वाले परम प्रबल सामन्तों की सभा वाले राजा तक सभी को पंचजनीय समितियों की अनुशंसाओं के अनुसार ही शासन संचालन करने के वेद वाक्य हैं। ऋग्वेद व ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में पाँचों वर्गों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अरण्यवासियों की समितियों व परिपदों का पंचजनाः कहा गया है। इस प्रकार राज्य व समाज की रचना में सभी वर्गों, वर्णों, श्रेणियों व जातियों का समान स्थान रहा है। पंचजनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अरण्य वासी अर्थात जनजाति लोगों की शासकीय सभा, समिति व परिषदें होती थीं।

जातियों में पेशे या व्यवसाय जनित आरोह–अवरोह : जब जिस जाति के व्यवसाय या पेशे का उत्कर्ष, अवसान या विलोपन हुआ अथवा जब जिस जाति को विशेष राज्याश्रय प्राप्त हुआ या छिना अथवा सत्ता में स्थान बना या छिना उससे जातियों का आर्थिक व सामाजिक परिवेश बदलता रहा है। इसके कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि हिन्दू जीवन पद्धति और आचार–व्यवहार में स्थायी रूप से कोई स्थायी रूप से श्रेष्ठ या कनिष्ठ नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक हिन्दू ग्रन्थों में अंग्रेजों के काल में प्रक्षेप या कूट रचित श्लोक रचना से ऊंच–नीच का भेद, ईसाई मतान्तरण के लिये भी किया या धन लोलुप संस्कृतज्ञों से करवाकर उन्हें प्रसारित किया गया है। अनेक ग्रन्थों में वे प्रक्षिप्त (जोड़े गये) श्लोक उनके विन्यास, छन्द, शब्द प्रयोग आदि से पृथक लगते हैं। ऐसे कुछ प्रकरणों का यहाँ उल्लेख समीचीन है :

(अ) **बनजारा समुदाय** : 'बंजारा', 'बनजारा' या 'वणजारा' शब्द मूलतः 'वाणिज्य' शब्द से उद्भूत 'वाणिज्यारा' शब्द का रूपान्तर है। बंजारा लोग प्राचीन अन्तर्देशीय व्यापारी व वाणिज्कि वर्ग से हैं। ये लोग, जब आवागमन के आधुनिक साधन नहीं थे, तब बैलों पर विविध प्रकार का सामान ढोकर उनका व्यापार करते थे। कई सौ बेलों पर विविध स्थानों से माल क्रय कर उनका अन्य स्थानों पर विक्रय करते थे। इण्डोनेशिया से अरब तक इन बणजारों की बनायी अनगिनत झीलें इसकी साक्षी हैं। यथा मारवाड़ व मेवाड़ के बीच अजमेर में तो बंजारों की बनायी झील का नाम ही ''बणजारी झील'' है। उदयपुर की विश्व प्रसिद्ध झील पीछोला, जिसकी पाल पर ही सम्पूर्ण राजमहल बना है, और जिसके अन्दर व तटों पर विश्व के सर्वोत्कृष्ट होटल बन हुये हैं, बणजारों की बनायी हुयी है। अफगानिस्तान के गौर, पाकिस्तान के लाहोर, पेशावर में भी ऐसी झीलें हैं और इनकी संख्या अनगिनत है, क्योंकि उनका मौखिक इतिहास उस स्थान की जनश्रुति में ही है। मेवाड़ में 15 दिन तक प्रतिदिन छः घण्टे चलने वाले ''गौरी नृत्य नाटिका'' में राजा व नगर सेठ से भी अधिक धनी बणजारा को दिखलाया जाता है। उसे प्रत्येक राज्य के दाणी अर्थात् तत्कालीन कस्टम अधिकारी को अनेक प्रलोभन दिखाकर अपने व्यापारिक काफिले को निकालते दिखाया जाता है। आज अनेक राज्यों में बंजारे लोग अनेक शारीरिक श्रम आधारित काम करते देखे जाते हैं। कई राज्यों में वे अन्य पिछड़ा वर्ग में व कुछ में अनुसूचित जाति में हैं, आधुनिक वाणिज्य के दौर में उनकी अन्तर्देशीय व्यापार पद्धति अप्रासंगिक हो गयी। कारखाना उत्पादों, जो प्रारम्भ में 18वीं व 19वीं सदी में इंग्लैण्ड से आते थे, के कारण भी लाखों–करोड़ो हस्त शिल्पी, बुनकर, लुहार आदि बेरोजगार हुये हैं। अनेक ऐसे कारीगर जजिया व जेहाद से विस्थापित भी किये गये थे। अंग्रेजों के शासन में नगरों के अप्रत्याशित विस्तार, नगरों में रोजगारों के संकेन्द्रण और नगरी समाजों के स्तरीकरण, शासकीय स्तरों के विभेद आदि में भी समाज में ऊँच–नीच का व्यवहार बढ़ता गया जो कहीं–कहीं अस्पृश्यता की सीमा तक चला गया।

(ब) **पासवान या दुसाध कुरू वंश से संबंधित** होने के वर्णन आते हैं और मगधराज महानन्द को शूद्र भी बतलाया जाता है। राजस्थान के कई भागों में मीणा जनजाति के राज्य रहे हैं। मेवाड़ के राज्य चिन्ह में राजपूत महाराणा के साथ भीलों के राजा ''भीलू राणा'' को आमने–सामने चित्रित कर संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया जाता रहा है, जिसका 1200 वर्षों के राज्य का अक्षुण्ण लिखित वंशक्रम पूर्वक इतिहास है। विदेशी मुस्लिम आक्रमणों के दौर में अनेक शासक व सैन्य वर्ग के लोग मतांतरण के भय से वनों में चले गये व उनकी कई पीढ़ियाँ वहीं निकलने के बाद वे वनवासी जनजातियों में ही रच बस गये। अन्यथा हमारे यहाँ प्राचीन काल में हिन्दू समाज में कहीं ऊँच–नीच जैसा व्यवहार नहीं रहा है। इसलिये रामचरित मानस में उत्तरकाण्ड में राम राज्य के वर्णन में लिखा है। **''राजघाट बांधेऊ परम मनोहर। तहाँ निमज्जिउ वरण चारिऊ नर।।** इसका पूर्व में विवेचन किया जा चुका है। खिलजी के आक्रमण के दौर में अनेक वीरो व विद्वानों को वनांचलों में जाना पड़ा था। अब उनकी वर्तमान पीढ़ियाँ भी जनजाति की तरह रहती हैं।

चूंकि अंग्रेजों के आने के बाद भारत में जो समृद्धि, धर्म परायणता और समाज में सुव्यवस्था व सुसंगठन देखा, उससे उन्हें लगता था कि भारत देश में ईसाईकरण सम्भव नहीं है, जो अफ्रीका या लेटिन अमेरिका या उत्तरी अमेरिका में सम्भव हो गया। इसलिये उन्होंने अपने आक्रमणों के दौर में सर्वाधिक ग्रन्थागारों को जलाया जो कई–कई दिनों या महीनों उनकों जलाने पड़े थे। वृन्दावन लाल वर्मा की लिखी 'महारानी लक्ष्मीबाई' में उन्होंने झांसी जैसे छोटे से राज्य के पुस्तकालय के जलाये जाने का उल्लेख किया है। बड़ी संख्या में अंग्रेजों व यूरोपीयनों ने उन दिनों संस्कृत ग्रंथों वेदों आदि की समीक्षा अपने ढंग से व हिन्दू धर्म ग्रन्थों की विकृत व्याख्या की हैं आज अनेक ग्रन्थों के भाष्य उन्हीं के उपलब्ध हैं। हमारे पारम्परिक भाष्यों को अग्नि के भेंट चढ़ा कर उन्होंने बड़ी संख्या में अनर्गल व्याख्या की है। यथा उन्होंने 'ते उभे चतुर्पदे सम्प्रसारयान' वेद वचन की अत्यन्त अश्लील व्याख्या कर दी। जबकि इसका ठीक अर्थ है कि वे उभे = वे दोनों अर्थात राजा व प्रजा, 'चतुर्पदे' = चारों पैर अर्थात धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूपी चारों पुरूषार्थ, ''सम्प्रसारयाव'' = का सर्वत्र प्रसार करें। प्राचीन हिन्दू वांग्मय की अनर्गल व्याख्या के कुत्सित प्रयासों पर पूरा स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। इसकी किसी अन्य ग्रन्थ में समीक्षा की जायेगी।

हिंदू संस्कृति उदार व खुलेपन वाली है :

सनातन हिन्दू धर्म व अन्य मत पंथों में यह अंतर सबसे महत्वपूर्ण है कि जब कोई भी नया व युगानुकूल विचार उभरता या विकसित होता है और यदि वह उस काल व पारिस्थिति से सुसंगत व सर्वथा उपयुक्त और लोक हित में आचरण योग्य प्रतीत होता है, तो हिन्दुत्व उसे आत्मसात कर लेता है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। परिवर्तनों से कालांतर में यदि उसमें कमियां दृष्टिगोचर होने लगती है, ऐसे में इस पूर्ववर्ती विचार का युगानुकूल परिष्कार भी कर लिया जाता है, पुनः वह एक संशोधित विचार के रूप में चलता रहता है। आगे चलकर इस परिष्कृत विचारधारा को परिवर्द्धित करने वाला और भी अधिक समयोचित कोई तीसरा विचार विकसित होता है तो उसका भी समावेश हो जाता है। इस प्रकार से यह सनातन विचार समय के साथ–साथ परिस्थिति सापेक्ष संशोधनों परिवर्द्धनों को निरंतर आत्मसात कर लेता है। एक ही समय में कई उपासना पंथों का विकास व अनुसरण आम बात रही है। हिन्दू धर्म की विशेषता यही है कि यह धर्म किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त मात्र संचय न होकर विगत अनगिनत (लाखों) सहस्त्राब्दियों में अनेकानेक व्यक्तियों के ज्ञान, शोधों व विचारों का अनवरत वर्द्धमान सम्मुच्चय है व हिन्दू मतानुसार करोड़ों वर्षों से यह सब परिवर्द्धन–संशोधन होता रहा है। उदाहरणतः जब समाज में हिंसा की वृत्ति बढ़ने लगी तो गौतम बुद्ध व वर्द्धमान महावीर ने समाज में पुनः अहिंसा व करूणा का भाव जगाया दोनों ही महापुरूषों का अवतरण ईस्वी पूर्व 6ठीं शताब्दी में मगध में हुआ। बौद्ध मत का प्रसार भारत से ही सम्पूर्ण ऐशिया में हुआ। गौतम बुद्ध का अवतार आज विष्णु भगवान के 24 अवतारों में एक है। सभी सनातन परम्परा के हिन्दू अपने दैनिन्दिन संकल्प में कलि प्रथम चरणे बौद्धावतारे'' उच्चारण कर इस काल को बौद्धावतार का काल खण्ड घोषित करते हैं। जहाँ सनातन परम्परा में ऋषभदेव विष्णु के चतुर्थ अवतार के रूप में पूज्य हैं उसी प्रकार श्रमण परम्परा में ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर के रूप में पूज्य हैं। इस प्रकार भारत में सभी उपासना परम्पराओं में कई अवतारों व महापुरूषों की साझी पूजा उपासना की परम्परा रही है। इस प्रकार से हिन्दू धर्म एक खुलेपन की जीवन पद्धति है जो वैचारिक कट्टरता नहीं अपितु समयोचित विवेक से विकसित, काल सुसंगत विचारों के संयोजन से पल्लवित व पुष्पित हुआ है। इसके विपरीत कुछ पंथ एक तंग गली की तरह बंद हो जाते हैं जो एक व्यक्ति या महापुरूष मात्र के विचारों पर ही केन्द्रित हैं और जो यह मानकर चलते है कि समय अपरिवर्तित रहता है और व्यक्ति का विवेक भी ठहरा हुआ ही रहता है। इन पथों में विचारों के विकास व परिशोधन का कोई स्थान या महत्व नहीं है। यही कारण है कि इन अनेक मत–पथों में एकाकी आग्रह अथवा वैचारिक कट्टरता पाई जाती है। सभी एकान्तवादी पंथ अत्यन्त व अन्य मत–पंथों के प्रति अनुदार हिंसात्मक और कट्टर हो जाते हैं। हिन्दू मत भी उतना ही कट्टर होता जितने एकान्तवादी पंथ हैं, यदि इसमें समायोचित विभिन्न सद्विचारों व शिक्षाओं के समावेश का स्थान नहीं होता। हिन्दू काल गणना (देखें अध्याय 3 में) के खरबों वर्षों के दौरान विविध अवतारों, महापुरूषों, ऋषियों, मुनियों के उद्बोधनों व आत्मसाक्षात्कार का संचय हिन्दू धर्म ग्रन्थों में है। एक ही परिवार में सभी सदस्यों के आराध्य भी भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। एक ही व्यक्ति परमात्मा की भिन्न–भिन्न शक्तियों के प्रतीक देवी–देवताओं का आराधक हो सकता है। वेद, पुराण, उपनिषद, गृह्य सूत्र, नीति ग्रंथ रामायण, महाभारत, विशाल श्रमण साहित्य, बौद्ध साहित्य, आदि – ग्रन्थ गुरूग्रन्थ सहिब, कबीर पंथ, दादू पंथ रूणीजा के राम देव जी की पूजा–परम्परा, हरे कृष्ण सम्प्रदाय, आर्य समाज ये सभी समस्त देशवासियों के लिये प्रेरणा के साझे स्रोत हैं।

वेद अनादि हैं, अपौरूषेय हैं और सब प्रकार के ज्ञान–विज्ञान से युक्त हैं। यहाँ तक कि जर्मन विद्वान मेक्स मूलर ने वेदों के प्रारम्भिक अध्ययन में इसे अनगढ़ स्तुतियों का गठजोड़ कहा, उसे भी अपने जीवन के अन्तिम कालखण्ड में कहना पड़ा कि वेद किसी दिव्य चेतना के अधीन रचे गये हैं। वेदों में आधुनिकतम विज्ञान से लेकर अत्यन्त उन्नत राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र व खगोल विज्ञान का ज्ञान भरा है। वेदों में विज्ञान की चर्चा इस पुस्तक का विषय नहीं है लेकिन, कुछ उदाहरणों की चर्चा से सनातन हिन्दू धर्म की समग्रता का परिचय हो जायेगा, जिसकी अन्य एकाकी आराधना वाले पंथों से कोई तुलना भी नहीं की जा सकती है। मौसमी नदियाँ व छोटे बड़े तालाब सूखते–भरते रहते हैं। लेकिन समुद्र, जिसमें वर्षानुवर्ष अनगिनत नदियाँ समाती रहती है, अक्षुण्ण रहता है और उसमें कोई अन्तर नहीं दिखलायी देता है। हिन्दुत्व किसी संकुचित उपासना पर केन्द्रित नहीं होकर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान की विवेचन प्रस्तुत करता है। यहाँ तक कि नास्तिक मत के चार्वाक दर्शन को भी इस ज्ञान के समुद्र में एक विचारों की सरिता के रूप में विवेचित किया है। चारों वेद, 5 उपवेद 18 पुराण, 18 उप–पुराण, 1008 उपनिषद जिनमें 108 उपनिषद प्रमुख हैं, शतपथ व ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, 6 दर्शन (यथा सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, न्याय, मीमास्य व योग दर्शन), 6 वेदांग (कल्प, शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, खगोल–ज्योतिष या त्रिस्कंध ज्योतिष) सूत्र ग्रन्थ (स्मार्त सूत्र, गृह्य सूत्र, योग सूत्र, न्याय सूत्र, शुल्व सूत्र, धर्म सूत्र आदि) इतिहास (रामायण, महाभारत आदि)

आगम आदि ग्रन्थों की रचना अलग–अलग काल खण्ड में लिपिबद्ध हुये हैं। इन ग्रन्थों में इस मध्य युग में अनेक प्रक्षेप भी हुये हैं। उनके शुद्ध पाठ में कहीं भी भेदभाव का स्थान नहीं है। समय–समय पर उनमें कुछ दुराग्रही लोगों ने अनुचित प्रकरण भी जोड़े हैं। अन्यथा आठवीं सदी के आक्रमणों के पूर्व हिन्दू संस्कृति में जाति भेद का कोई स्थान नहीं रहा है।

जातियाँ – हमारे यहाँ जातियों में ऊंच–नीच की कोई संकल्पना नहीं रही है। चारों वर्ण परमात्मा की समान रूप से सन्तान हैं, यथा 'सब मम उपजाये' पेशे वे जीवन वृत्ति (occupation) से ये शिल्प समूह (Craft Guilds) रही हैं और परिवार के बच्चे उनमें प्रशिक्षु (Apprentice) होते थे। जिसे वह कौटुम्बिक प्रशिक्षु वृत्ति नहीं करनी होती थी वह गुरूकुलों में अध्ययन हेतु जाने को स्वतंत्र थे। महीदास, जाबाला पुत्र सत्यकाम, इतरा के पुत्र ऐतरेय (ऐतरेय ब्राह्मण व ऐतरेय उपनिषद आदि के रचयिता) आदि के कई उदाहरण रहे हैं।

अस्पृश्यता – बाहरी आक्रमणों से आरोपित विकृति

अरबों के आक्रमणों के पूर्व हम एक समरस समाज थे। जिहादी आक्रमणों की उसी तरह की वीभत्सता जो आज हम इस्लामिक स्टेट (ISIS) या अन्य जिहादी व तालिबानी आक्रमणों में देखते हैं। महिलाओं व बच्चों नृशंस हत्याओं, सिरच्छेद व दुराचार आदि से आतंकित कर मतान्तरण आदि के संचार माध्यमों के आज के दृष्यों जैसे ही 1200 वर्षों के जिहादी आक्रमणों के उस दौर में जेहादी मतान्तरकर्त्ताओं के चुंगुल मे फंस कर उनके वीभत्स आतंक से घबरा कर करोड़ों लोग मतान्तरित हुये। लेकिन, धर्म के प्रति दृढ़–मूल लोग धर्म पर अडिग रहे व मतान्तरित नहीं हुये। उन्हें मैला उठाने से लेकर कई अन्य ऐसे ही हेय काम करने को बाध्य कर देना उनको कारोबार विहीन कर देना जजिया लगा कर उनका धन हर लेना आदि तब आम बात थी। मुस्लिमों में पर्दा प्रथा के चलते मैला उठाने के काम की उत्पत्ति हुयी और ऐसे कामों से अस्पृश्यता आदि का जन्म हुआ। अंग्रेजों के राज्य में नगरों के प्रशासन में स्तरीकरण, उच्च व निम्न पदों की रचना करना, उनमें औपनिवेषिक विभेद करना, प्रशासनिक व कार्मिक पदों का स्तरीकरण आदि ने पूरी एक जातीय स्तरीकरण की परम्परा खड़ी कर दी। ये सभी वे लोग हैं, जिन्होंने जिहाद व जजिया अथवा मिशनरी प्रलोभनों से अविचलित रह कर अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण रखा है।

विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा गुलाम बनाना, आतंकपूर्वक मुसलमान बनाने के लिये सब प्रकार के अत्याचार करना तब आम बात हो गयी थी। आठवीं सदी से 18 वीं सदी तक हुये ये अत्याचार कितने लोमहर्षक व विभत्स थे। अलाउद्दीन खिलजी के काल में एक बार तो ऐसा समय आ गया था कि कश्मीर से कन्या कुमारी तक कहीं भी हिन्दू शासन नहीं बचा था। सीसौद से आकर हम्मीर द्वारा चित्तौड़ को मुक्त कराने के बाद दक्षिण में भी हिन्दू राज्यों का पुनःजागरण हुआ और अन्ततः आज हम एक सबल–समर्थ राष्ट्र हैं। विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का मुसलमान बनाने के लिये कैसे आतंक का दौर था, इसका एक विवरण ही यहाँ पर्याप्त है।

औरंगजेब द्वारा 1675 में गुरू तेग बहादुर द्वारा मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करने पर उनका सिर काट देना। उससे पहले उनके तीन शिष्यों नृशंसतापूर्वक वध करना। भाई मतिदास को जीवित आरे से चीरा गया, भाई दयालदास को उबलते तेल में भून देना और भाई सतीदास की बोटी–बोटी काट कर हत्या करना आदि इस्लाम मतान्तरण के लिये डाले जाने वाले दबाव के ही प्रमाण हैं। मुगलों द्वारा ही सन् 1716 में बन्दा सिंह के 4 वर्ष के पुत्र की बोटी–बोटी काट कर उसका कलेजा बन्दा सिंह के मुख में ठूंसना और फिर उसकी एक–एक कर आंखे निकाल देना, एक–एक कर हाथ–पाँव काट देना और फिर उसके शरीर से उसका माँस नोच देना आदि उन नरक से भी बदतर यातनाओं के उदाहरण हैं, जिनसे बुरा कर लोगों को मुसलमान बनाया या उनके पारम्परिक शिल्प व कारोबार से अलग कर कई प्रकार के हेय कार्य करने को बाध्य किया गया। मुस्लिम शासन में हिन्दुओं को किस दृष्टि से देखा जाता था। इसके अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316) व औरंगजेब (1658–1707) के काल के निम्न 2 ऐतिहासिक तथ्य भी पठनीय है। **(i) खिलजी के राज्य में हिन्दुओं के प्रति दृष्टि** : उस काल में जो हिन्दू परिवार **वीभत्स अत्याचारों के दौर में अडिग रहे, उन्हें कई हेय कार्य करने को बाध्य किया गया, उनका पैतृक व्यवसाय छीन लिया उन पर जजिया नामक नृशंस कर आतंक परक कर या टैक्स लगाया गया। वह जजिया भी उन्हें बहुत अपमानित करते हुये लिया जाता था। अलाउद्दीन खिलजी व काजी अला उल मुल्क का यह संवाद पठनीय है।** जब दिल्ली की गद्दी पर खिलजियों की हुकूमत हुई तो अलाउद्दीन खिलजी 1296–1316 ने अपनी काजी अता उल मुल्क से पूछा कि 'मैं हिन्दुओं से कैसा व्यवहार करूँ,' काजी बोला 'तुम हिन्दुओं को सिर्फ नजराना और शुकराना देने वाला समझो।' यानि जब कोई हिन्दू किसी मुस्लिम पदाधिकारी के सामने जाये तो उसे नजराना के रूप में कुछ धन दे और जब अधिकारी जाने लगे तब भी शुकराना के तौर पर कुछ धन फिर से दे, अगर मुस्लिम अधिकारी हिन्दू से चांदी का सिक्का मांगे तो हिन्दू उसे सोने का सिक्का देकर उसे खुश करे, यदि अधिकारी थूकना चाहे, तो हिन्दू अपना मुंह खोल दे और उसे मुंह में थूकने दें। खिलजी बोला 'काजी तुझे इस्लाम का पूरा ज्ञान है'। **(ii) तारीखे फिरोजशाही – जिया उद्दीन बरनी** : इसी तरह शेख हमदानी ने अपनी किताब ''जखिरतुल मुल्क'' में लिखा है औरंगजेब ने जब 1679 में जजिया लागू किया तो, आदेश दिया कि हिन्दू कोई नया बुतखाना नहीं बना सकते और न उसकी मरम्मत कर सकते हैं, अगर हिन्दू किसी सम्बन्धी की मौत पर जोर–जोर से रोयेंगे तो जुर्माना लगेगा, शंख बजने, घंटा बजने पर भी टैक्स लगेगा, अगर हिन्दू जजिया नहीं दे सकें तो उनके मंदिरों को तोड़कर जजिया वसूला जायेगा या उनकी लड़कियों को कनीज बना लिया जायेगा, मुसलमान इसीलिए औरंगजेब की तारीफ करते हैं, व मुसलमानों का आदर्श है। मुसलमानों ने इसी जजिया की ताकत से देश में कई मुसलमान बना दिए थे। इरान में सन 1884 और ट्यूनिसिया और अल्जीरिया में सन 1855 तक जजिया लिया जाता था। इसके कारण वहां के गैर मुस्लिम या तो पलायन कर गए या विवश होकर मुसलमान बन गए। इस प्रकार जिहाद की तरह जजिया भी भयावह आतंक के रूप में प्रयुक्त किया गया।

सम्पूर्ण समरसता पूर्ण या समरस समाज– हमारी दीर्घ परम्परा व आज की अनिवार्य आश्यकता

हमारे यहाँ बाह्य आक्रमणों से उपजी ऊंच–नीच व अस्पृश्यता की विकृति को मानवता के प्रति अन्याय व अपराध के रूप में ही देखा जाना चाहिये। जल स्रोतों से लेकर मन्दिर, श्मशान आदि सभी स्थानों पर सबका समान रूप से प्रवेश होना चाहिये। शादी विवाह में घोड़ी पर बैठने से लेकर सभी मंगल कार्यों में सभी लोगों का पूर्ण अधिकार व सम्मान बना रहना चाहिये।

मांगलिक कार्यों में जाति भेद रहित होकर सबका सबके यहाँ आना–जाना होना चाहिये।

सब हिन्दू एक ही भारत माता की सन्तान हैं। सबके प्रति हमारा समान आत्मीय भाव रहे। हजारों वर्षों से हम यहाँ साथ रहते आये हैं। हम सभी ने मिलकर इस देश के इतिहास को उज्जवल बनाया है। यह हमारा साझा इतिहास है, साझे पूर्वज हैं और सुख–दुःख की अनुभूतियाँ भी साझी हैं।

बाहर के मुट्ठी भर आक्रमणकारियों ने फूट डालकर स्थानीय राजा–महाराजाओं में धर्म की रक्षार्थ वांछित परस्पर सहयोग व एकता के अभाव में और हमारे में अन्य आधारों पर फूट डाल कर ही राज्य किया है। जातिगत भेद–भाव व ऊंच–नीच के नाम पर मिशनरियों ने भी बड़े स्तर पर मतान्तरण किये हैं। मतान्तरण से अब अल्प संख्यक बहुसंख्यक के भेद से अलगाववाद को बढ़ावा देने के प्रयास किये जा रहे हैं। मतान्तरण में भय वे प्रलोभन का भी सर्वाधिक उपयोग किया है। इसलिये समरसतापूर्ण हिन्दुत्व हमें जोड़ता है और भेदभाव तोड़ता है।

लेकिन, आज जो अलगाव की दीवारें हमें बाँट रही हैं, उनको हमें ही निर्मूल करना है। हमें वर्ण भेद, जाति भेद, अस्पृश्यता व भाषाई भेदभाव को समूल दूर करना होगा। वैसे यह बुराई समाज के एक बड़े भाग से में विरल हो चुकी है या दूर हो चुकी है। सारे भारतवासियों के पूर्व साझे हैं। कहीं–कहीं कुछ लोग अभी भी यदि भेद करते है तो उन्हें सही मार्ग पर लाना है। उनमें भाव परिवर्तन करना है। आज–कल जिस मात्रा में बस्तियों में साथ–साथ रहना और जाति निरपेक्ष परस्पर व्यवहार बढ़ा है, उससे जाति भेद व अस्पृश्यता अब शीघ्र ही समाप्त होनी ही है। हमें इसके लिये पूरे प्रयास करने हैं। समाज के सभी तर्कशील, समझदार, प्रभावी व नेतृत्ववान लोगों को इसमें आगे आना चाहिये। समाज के किसी भी वर्ग को कोस कर उनमें विद्वेष उत्पन्न करना, किसी को जातिगत अपमानित करना, वैमनस्य रखना, परस्पर कोई दुर्भावना रखना सर्वथा अनुचित है। किसी जाति या वर्ग के सभी लोगों को अत्याचार की प्रतिमूर्त्ति कह कर वैमनस्य उत्पन्न करना, अत्याचार की कल्पित कहानियाँ गढ़ना भी अनावश्यक सामाजिक अलगाव उत्पन्न करते हैं।

अस्पृश्यता निवारण के कुछ प्रयास : हमारे यहाँ जातिगत विविधता चाहे रही हों लेकिन, प्राचीन काल में पारस्परिक द्वेष, वैमनस्य या आपसी अवमानना नहीं रहीं हैं। जातिगत अवमानना नहीं रही होने के कारण सामाजिक विषमता दूर करने के प्रयास बहुत पहले से होते रहे हैं। विदेशी इस्लामी व अंग्रेजी आक्रमणों के दौर में उपजी ऊँच–नीच व अस्पृश्यता के विरूद्ध हमारे देश में स्वाधीनता के पूर्व उन्नीसवीं सदी से ही सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग व अस्पृश्य समाज की उन्नति के प्रयास अनेक संवेदनशील महापुरूषों ने प्रारम्भ कर दिये थे।

देश में ऊंच–नीच का भेदभाव व अस्पृश्यता का प्रसार अरबों के आक्रमणों के बाद विगत 1300 वर्षों के जेहादी आक्रमण, व अंग्रेजी राज्य उत्तरदायी रहे हैं। लेकिन इस घोर बुराई के विरूद्ध देश में सभी प्रकार व सभी श्रेणी के लोगों ने प्रयास भी किये हैं। देश में अस्पृश्यता निवारण एवं ऊंच–नीच का भेदभाव मिटाने में विगत एक हजार वर्षों के प्रयासों पर दृष्टि करें तो 1000 वर्ष पूर्व विशिष्टाद्वैत के आचार्य अभिनव गुप्त ने तब अथक प्रयास किये थे। उन्होंने ही भेदभाव मिटाने हेतु सर्व प्रथम 'हरिजन' शब्द का प्रयोग कर सभी जाति–वर्णों को मंत्र दीक्षा देने और भेदभाव रहित व्यवहार का प्रतिपादन किया। इस प्रकार अस्पृश्यता व ऊँच–नीच के भेद को मिटाने में एक हजार वर्ष पूर्व अभिनव गुप्त, 500 वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु, उसके बाद परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, दादा बा पाण्डुरंग, राम बालकृष्ण, आत्माराम पाण्डुरंग, डा. भण्डारकर व न्यायमूर्त्ति रानाडे जैसे संवेदनशील समाज सुधारकों का बड़ा योगदान रहा है। छत्रपति शाहू महाराज व सांगली के ब्राह्मण राजा साहब का भी उन्नीसवीं सदी में समरसता निर्माण में अमिट योगदान रहा है। उन्होंने तब सत्यशोधक समाज के लिये रूपये 35 का सहयोग भी दिया था। रामकृष्ण परमहंस ने तो शूद्रातिशूद्र का शौचालय साफ कर ऐसी समरसता को परमहंस कहलाने में पहली सीढ़ी बतलाया है। एक हजार वर्ष पूर्व आचार्य अभिनव गुप्त जैसे विद्वानों ने भी ऊँच–नीच को निर्मूल करने हेतु अथक प्रयास किये हैं। बाबा साहब अम्बेडकर के विद्यालयीन ब्राह्मण शिक्षक अम्बेडकर से लेकर बड़ौदा के महाराजा तक सभी ने बाबा साहब की सब प्रकार से सहायता की थी। उस काल में अनेक ब्राह्मण भी भेदभाव निवारण में सक्रिय रहे हैं। उन्नीसवी सदी में 1848 में पुणे के भिड़े बाड़े में ऐसे अस्पृष्य समाज की बालिकाओं के लिये महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा आरम्भ किये विद्यालय में सहयोगी सखाराम यशवन्त परांजपे, सदाशिव गोविन्द साठे, सदाशिव गोविण्डे आदि सभी कथित उच्च वर्णीय लोग थे। इस विद्यालय को 1851 में पुनः चिपलूणकर बाड़े में फिर से प्रारम्भ करने पर अनेक सहयोगी ब्राह्मण थे। इसकी समिति में 8 में से 6 ब्राह्मण थे। भिड़े द्वारा अपने बाड़े में स्थान देने से लेकर उस विद्यालय में सभी शिक्षक ब्राह्मण थे। इस प्रकार स्वप्रेरणा से समाज सुधार के प्रयास 19वीं सदी से ही प्रारम्भ हो गये थे और उनमें सभी वर्ण के लोग सहयोगी बनते रहे हैं। बाबा साहब ने अपने अनुभवों में उनके कई ब्राह्मण शिक्षकों यथा उनके हाई स्कूल शिक्षक श्री पेण्डसे, गणिति शिक्षक श्री जोशी, प्रधानाध्यापक कृष्णा जी अर्जुन केलुस्कर आदि द्वारा उनको दिये संरक्षण का श्रृद्धा पूर्वक उल्लेख किया है। उनके महाड़ सत्याग्रह में श्री बापूराव जोशी का सहयोग और इसी क्रम में उनके सहपाठी रहे प्रोफेसर अश्वथामाचार्य बालाचार्य, गजेन्द्र गढ़कर के, बाबासाहब के आग्रह पर पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी के सिद्धार्थ कॉलेज, बोम्बे में प्राचार्य पद स्वीकारना आदि ऐसे कई समरसता निर्माण हेतु आगे आने वाले लोगों के उदाहरण भी हैं। इस प्रकार हर काल खण्ड में भेदभाव मूलक व्यवहार के साथ ही समता के प्रयास करने वाले पावन संकल्प युक्त लोग भी रहे हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपनी 1925 में स्थापना के समय से ही जाति व पंथ भेद रहित समरसता के ध्येय से ही कार्य प्रारम्भ किया। संघ के स्थापक पूजनीय डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार जी ने हिन्दू समाज की पारम्परिक एकता को पुनर्स्थापित करने के लिये ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना करने का निश्चय किया था। उनके विचारों में हिन्दू समाज की इस पारम्परिक एकता के विरल होने से ही देश पर एक के बाद एक विदेशी आक्रमण होते चले गये। इसलिये **राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की 1925 में स्थापना के समय से ही संघ में जाति निरपेक्ष समरसता के आधार पर ही, सब लोग परस्पर व्यवहार करते थे।** इस संबंध में बाबा साहब अम्बेडकर का अनुभव भी यहाँ उद्धरणीय है। बाबासाहेब को भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में व अस्पृष्यता निवारण के प्रयासों की थी।

सन् 1939 में पूणे में लगे संघ शिक्षा वर्ग में शाम के कार्यक्रम में बाबासाहब आये। पूज्य आद्य सरसंघचालक डा. हेडगेवार जी भी वहाँ थे। लगभग सवा पाँच सौ पूर्ण गणवेशधारी स्वयंसेवक संघ स्थान पर थे। बाबासाहब ने डा. हेडगेवार से पूछा – 'इनमें अस्पृश्य कितने हैं? डाक्टर साहब 'चलो, घूम कर देखते हैं।' बाबासाहब बोले – 'इनमें अस्पृश्य तो कोई दिख नहीं रहा'। डा. हेडगेवार ने कहा – 'आप पूछ लें'। बाबासाहब ने पूछा – 'आप में से जो अस्पृश्य हों, वे एक कदम आगे आ जाये।' उस पंक्ति में से एक भी स्वयंसेवक आगे नहीं आया। बाबासाहब ने कहा – 'ये देखिये'। इस पर डा. हेडगेवार ने कहा– 'हमारे यहाँ यह बताया ही नहीं जाता की आप अस्पृश्य हैं। आप अपनी अभिप्रेत जाति का नाम लेकर उनसे पूछें'। तब बाबासाहब ने स्वयंसेवकों से प्रश्न किया

सब हिन्दू एक ही भारत माता की सन्तान हैं। सबके प्रति हमारा समान आत्मीय भाव रहे। हजारों वर्षों से हम यहाँ साथ रहते आये हैं। हम सभी ने मिलकर इस देश के इतिहास को उज्जवल बनाया है। यह हमारा साझा इतिहास है, साझे पूर्वज हैं और सुख–दुःख की अनुभूतियाँ भी साझी हैं।

बाहर के मुट्ठी भर आक्रमणकारियों ने फूट डालकर स्थानीय राजा–महाराजाओं में धर्म की रक्षार्थ वांछित परस्पर सहयोग व एकता के अभाव में और हमारे में अन्य आधारों पर फूट डाल कर ही राज्य किया है। जातिगत भेद–भाव व ऊंच–नीच के नाम पर मिशनरियों ने भी बड़े स्तर पर मतान्तरण किये हैं। मतान्तरण से अब अल्प संख्यक बहुसंख्यक के भेद से अलगाववाद को बढ़ावा देने के प्रयास किये जा रहे हैं। मतान्तरण में भय वे प्रलोभन का भी सर्वाधिक उपयोग किया है। इसलिये समरसतापूर्ण हिन्दुत्व हमें जोड़ता है और भेदभाव तोड़ता है।

लेकिन, आज जो अलगाव की दीवारें हमें बाँट रही हैं, उनको हमें ही निर्मूल करना है। हमें वर्ण भेद, जाति भेद, अस्पृश्यता व भाषाई भेदभाव को समूल दूर करना होगा। वैसे यह बुराई समाज के एक बड़े भाग से में विरल हो चुकी है या दूर हो चुकी है। सारे भारतवासियों के पूर्व साझे हैं। कहीं–कहीं कुछ लोग अभी भी यदि भेद करते है तो उन्हें सही मार्ग पर लाना है। उनमें भाव परिवर्तन करना है। आज–कल जिस मात्रा में बस्तियों में साथ–साथ रहना और जाति निरपेक्ष परस्पर व्यवहार बढ़ा है, उससे जाति भेद व अस्पृश्यता अब शीघ्र ही समाप्त होनी ही है। हमें इसके लिये पूरे प्रयास करने हैं। समाज के सभी तर्कशील, समझदार, प्रभावी व नेतृत्ववान लोगों को इसमें आगे आना चाहिये। समाज के किसी भी वर्ग को कोस कर उनमें विद्वेष उत्पन्न करना, किसी को जातिगत अपमानित करना, वैमनस्य रखना, परस्पर कोई दुर्भावना रखना सर्वथा अनुचित है। किसी जाति या वर्ग के सभी लोगों को अत्याचार की प्रतिमूर्त्ति कह कर वैमनस्य उत्पन्न करना, अत्याचार की कल्पित कहानियाँ गढ़ना भी अनावश्यक सामाजिक अलगाव उत्पन्न करते हैं।

अस्पृश्यता निवारण के कुछ प्रयास : हमारे यहाँ जातिगत विविधता चाहे रही हों लेकिन, प्राचीन काल में पारस्परिक द्वेष, वैमनस्य या आपसी अवमानना नहीं रहीं हैं। जातिगत अवमानना नहीं रही होने के कारण सामाजिक विषमता दूर करने के प्रयास बहुत पहले से होते रहे हैं। विदेशी इस्लामी व अंग्रेजी आक्रमणों के दौर में उपजी ऊँच–नीच व अस्पृश्यता के विरूद्ध हमारे देश में स्वाधीनता के पूर्व उन्नीसवीं सदी से ही सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग व अस्पृश्य समाज की उन्नति के प्रयास अनेक संवेदनशील महापुरूषों ने प्रारम्भ कर दिये थे।

देश में ऊंच–नीच का भेदभाव व अस्पृश्यता का प्रसार अरबों के आक्रमणों के बाद विगत 1300 वर्षों के जेहादी आक्रमण, व अंग्रेजी राज्य उत्तरदायी रहे हैं। लेकिन इस घोर बुराई के विरूद्ध देश में सभी प्रकार व सभी श्रेणी के लोगों ने प्रयास भी किये हैं। देश में अस्पृश्यता निवारण एवं ऊंच–नीच का भेदभाव मिटाने में विगत एक हजार वर्षों के प्रयासों पर दृष्टि करें तो 1000 वर्ष पूर्व विशिष्टाद्वैत के आचार्य अभिनव गुप्त ने तब अथक प्रयास किये थे। उन्होंने ही भेदभाव मिटाने हेतु सर्व प्रथम 'हरिजन' शब्द का प्रयोग कर सभी जाति–वर्णों को मंत्र दीक्षा देने और भेदभाव रहित व्यवहार का प्रतिपादन किया। इस प्रकार अस्पृश्यता व ऊँच–नीच के भेद को मिटाने में एक हजार वर्ष पूर्व अभिनव गुप्त, 500 वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु, उसके बाद परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, दादा बा पाण्डुरंग, राम बालकृष्ण, आत्माराम पाण्डुरंग, डा. भण्डारकर व न्यायमूर्त्ति रानाडे जैसे संवेदनशील समाज सुधारकों का बड़ा योगदान रहा है। छत्रपति शाहू महाराज व सांगली के ब्राह्मण राजा साहब का भी उन्नीसवीं सदी में समरसता निर्माण में अमिट योगदान रहा है। उन्होंने तब सत्यशोधक समाज के लिये रूपये 35 का सहयोग भी दिया था। रामकृष्ण परमहंस ने तो शूद्रातिशूद्र का शौचालय साफ कर ऐसी समरसता को परमहंस कहलाने में पहली सीढ़ी बतलाया है। एक हजार वर्ष पूर्व आचार्य अभिनव गुप्त जैसे विद्वानों ने भी ऊँच–नीच को निर्मूल करने हेतु अथक प्रयास किये हैं। बाबा साहब अम्बेडकर के विद्यालयीन ब्राह्मण शिक्षक अम्बेडकर से लेकर बड़ौदा के महाराजा तक सभी ने बाबा साहब की सब प्रकार से सहायता की थी। उस काल में अनेक ब्राह्मण भी भेदभाव निवारण में सक्रिय रहे हैं। उन्नीसवी सदी में 1848 में पुणे के भिड़े बाड़े में ऐसे अस्पृष्य समाज की बालिकाओं के लिये महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा आरम्भ किये विद्यालय में सहयोगी सखाराम यशवन्त परांजपे, सदाशिव गोविन्द साठे, सदाशिव गोविण्डे आदि सभी कथित उच्च वर्णीय लोग थे। इस विद्यालय को 1851 में पुनः चिपलूणकर बाड़े में फिर से प्रारम्भ करने पर अनेक सहयोगी ब्राह्मण थे। इसकी समिति में 8 में से 6 ब्राह्मण थे। भिड़े द्वारा अपने बाड़े में स्थान देने से लेकर उस विद्यालय में सभी शिक्षक ब्राह्मण थे। इस प्रकार स्वप्रेरणा से समाज सुधार के प्रयास 19वीं सदी से ही प्रारम्भ हो गये थे और उनमें सभी वर्ण के लोग सहयोगी बनते रहे हैं। बाबा साहब ने अपने अनुभवों में उनके कई ब्राह्मण शिक्षकों यथा उनके हाई स्कूल शिक्षक श्री पेण्डसे, गणिति शिक्षक श्री जोशी, प्रधानाध्यापक कृष्णा जी अर्जुन केलुस्कर आदि द्वारा उनको दिये संरक्षण का श्रृद्धा पूर्वक उल्लेख किया है। उनके महाड़ सत्याग्रह में श्री बापूराव जोशी का सहयोग और इसी क्रम में उनके सहपाठी रहे प्रोफेसर अश्वथामाचार्य बालाचार्य, गजेन्द्र गढ़कर के, बाबासाहब के आग्रह पर पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी के सिद्धार्थ कॉलेज, बोम्बे में प्राचार्य पद स्वीकारना आदि ऐसे कई समरसता निर्माण हेतु आगे आने वाले लोगों के उदाहरण भी हैं। इस प्रकार हर काल खण्ड में भेदभाव मूलक व्यवहार के साथ ही समता के प्रयास करने वाले पावन संकल्प युक्त लोग भी रहे हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपनी 1925 में स्थापना के समय से ही जाति व पंथ भेद रहित समरसता के ध्येय से ही कार्य प्रारम्भ किया। संघ के स्थापक पूजनीय डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार जी ने हिन्दू समाज की पारम्परिक एकता को पुनर्स्थापित करने के लिये ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना करने का निश्चय किया था। उनके विचारों में हिन्दू समाज की इस पारम्परिक एकता के विरल होने से ही देश पर एक के बाद एक विदेशी आक्रमण होते चले गये। इसलिये **राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की 1925 में स्थापना के समय से ही संघ में जाति निरपेक्ष समरसता के आधार पर ही, सब लोग परस्पर व्यवहार करते थे।** इस संबंध में बाबा साहब अम्बेडकर का अनुभव भी यहाँ उद्धरणीय है। बाबासाहेब को भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में व अस्पृष्यता निवारण के प्रयासों की थी।

सन् 1939 में पूणे में लगे संघ शिक्षा वर्ग में शाम के कार्यक्रम में बाबासाहब आये। पूज्य आद्य सरसंघचालक डा. हेडगेवार जी भी वहाँ थे। लगभग सवा पाँच सौ पूर्ण गणवेशधारी स्वयंसेवक संघ स्थान पर थे। बाबासाहब ने डा. हेडगेवार से पूछा – 'इनमें अस्पृश्य कितने हैं? डाक्टर साहब 'चलो, घूम कर देखते हैं।' बाबासाहब बोले – 'इनमें अस्पृश्य तो कोई दिख नहीं रहा'। डा. हेडगेवार ने कहा – 'आप पूछ लें'। बाबासाहब ने पूछा – 'आप में से जो अस्पृश्य हों, वे एक कदम आगे आ जाये।' उस पंक्ति में से एक भी स्वयंसेवक आगे नहीं आया। बाबासाहब ने कहा – 'ये देखिये'। इस पर डा. हेडगेवार ने कहा– 'हमारे यहाँ यह बताया ही नहीं जाता की आप अस्पृश्य हैं। आप अपनी अभिप्रेत जाति का नाम लेकर उनसे पूछें'। तब बाबासाहब ने स्वयंसेवकों से प्रश्न किया

– 'इस वर्ग में कोई हरिजन, मांग, चमार हो, तो एक कदम आगे आये'। ऐसा कहने पर कई स्वयंसेवकों ने कदम आगे बढ़ाया। उनकी संख्या सौ से ऊपर थी। अपने बाबासाहब व्यवसाय के निमित्त एक बार दापोली गये थे, तब वहाँ की संघशाखा पर गये और खुलेमन से स्वयंसेवकों से चर्चा की। महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् सरकार ने द्वेषवश संघ पर प्रतिबंध लगाया था, तब संघ के इन्हीं सब सद्प्रयासों को दृष्टिगत कर व संघ की उसमें संलिप्तता नहीं होने के कारण उसे उठाने के लिये बाबासाहब ने सरदार पटेल व श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर प्रयत्न किये थे। जुलाई 1949 में संघ पर लगा प्रतिबंध हटने के बाद उनके द्वारा किये गये प्रयासों के लिए उनका आभार मानने के निमित्त सितम्बर 1949 में श्री गुरूजी उनसे दिल्ली में मिले थे।

आगे चलकर द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरूजी के प्रयत्नों से उडुपी में सारे धर्माचार्य का सम्मेलन हुआ। 12 दिसम्बर, 1969 को उक्त सम्मेलन के अन्तर्गत विश्व हिन्दू परिषद की विद्वत् सभा में सारे धर्माचार्यों ने घोषणा की कि 'अस्पृश्यता धर्मसम्मत' नहीं है। न हिन्दू पतितो भवेत। हिन्दवः सहोदरा सर्वे का स्पष्ट निर्णय दिया।

डा. साहब के बाद श्री गुरूजी ने भी उसी समरसता को आधार बनाकर कार्य को आगे बढ़ाया। तृतीय सरसंघचालक बाला साहब देवरस का बसंत व्याख्यान इस संबंध में उत्कृष्ट मार्गदर्शन प्रदान करता है। संघ के वर्तमान व छठें सरसंघचालक मोहनराव जी भागवत का सर्वाधिक बल भी इस बात पर है कि कहीं भी मंदिर, जलस्थान, श्मशान आदि में प्रवेश व उपयोग में हिन्दू समाज में कोई भेदभाव नहीं रहे। संघ के प्रचारक दत्तोपंत जी ठेंगड़ी ने भण्डारा के उपचुनाव में जिस प्रकार अम्बेडकर जी का सहयोग कर, उस चुनाव क्षेत्र से अनुसूचित जाति के मतों से कहीं ज्यादा अधिक मत दिलाने का सहयोग किया। उस घटना से प्रभावित होकर बाबा साहब ने भी जाति के स्थान पर सर्वस्पष्ट राजनीति पर अधिक बल देना प्रारम्भ किया। वस्तुतः जब बाबा साहब अम्बेडकर को भण्डारा के उप चुनाव में उस चुनाव क्षेत्र के अनुसूचित जाति के मतों से कहीं अधिक मत ठेगंड़ी जी के सहयोग से मिले, तो उन्होंने अपने तत्कालीन राजनीतिक दल Scheduled Caste Federation के स्थान पर Republic Party of India के गठन की भी पहल कर दी थी। तब उनका यही कहना था कि अब जाति आधारित राजनीति का समय नहीं है। वीर सावरकर व गायत्री परिवार के संस्थापक पण्डित राम शर्मा आचार्य के भी अस्पृष्यता निवारण में अथक प्रयास रहे हैं। ऐसे इन सभी अनगिनत महापुरूषों के भगीरथ प्रयासों से आज हम बड़े प्रमाण में ऊंच–नीच को समाप्त कर समरस राष्ट्र निर्माण की ओर बढ़ रहे हैं। यह देश में बहुसंख्य समाज का चिन्तन समरसता मूलक होने से भी संविधान में आरक्षण के प्रावधान से लेकर अस्पृष्यता को अपराध घोषित करने जैसे अनेक समता मूल अधिनियमों के विधेयक में देश की राष्ट्रीय चिति भी आज समरसता की पक्षधार है।

वस्तुतः समर्थ भारत व सशक्त भारत निर्माण हेतु हिन्दू समाज की, जाति भेद से परे समरसता पूर्ण एकता ही एक मात्र विकल्प है। यहाँ हम सब हिन्दू हैं। कोई शोषक व शोषित हो ऐसा नहीं है। हम सबको भेद–भाव रहित हिन्दू एकता के लिये काम करना है। हिन्दू चिन्तन प्रणाली प्राणी मात्र में एक ही परमात्मा को देखती है। समस्त भारतवासियों के पूर्वज हिन्दू थे। इसलिये देश में आज किसी की भी पूजा या उपासना पद्धति कुछ भी हो, हम सभी हिन्दू हैं। हमारा साझा इतिहास व साझी स्मृतियाँ हैं, यह हमें हिन्दू समाज को एक जन व एक समाज का बोध करा एक समरस हिन्दू समाज व सशक्त हिन्दू राष्ट्र का निर्माण करना है। हिन्दू में कोई ऊँचा या नीचा नहीं कहा जा सकता है।

हमारे लिये करणीय कार्य :

1. सबके साथ समान व्यवहार
2. जातीय दृष्टि से कोई ऊँचा या नीचा नहीं है
3. सभी जातियों के बन्धु–बहिन एक समरस हिन्दू समाज के अंग हैं। परस्पर एक दूसरे के दुःख–दर्द व प्रसन्नता के पलों में सहभागिता
4. मन्दिर, श्मशान, जलस्रोत, धर्मस्थल, धर्मशालाओं आदि में समान भाव से सबका प्रवेश
5. अभाव व आपत्ति के समय सबको अपने परिवार के सदस्य से भी बढ़कर अपना मानते हुये उसमें बिना किसी दाता–भाव के सहभागी बनना
6. कोई हिन्दू परिजन कहीं परित्यक्ता या उपेक्षित अनुभव नहीं करें। अस्पृश्यता जैसा आसुरी भाव एवं जातीय ऊँच–नीच का भाव एवं उसकी अहमन्यता किंचित मात्र भी नहीं रहे।
7. सभी पंथों के भारतीयों को भी यह स्मरण दिलाकर देश के प्रति उनमें यह निष्ठा जगाना कि, कभी हुये मतान्तरण के पूर्व या उनके पंथ की स्थापना के पूर्व उनके पूर्वज भी हिन्दू ही थे। इसलिये उनमें भी हिन्दुत्व की इस विरासत के प्रति संवेदना उत्पन्न करना और उनमें भी अतीत के हिन्दूपन का बोध जाग्रत हो और बना रहे। इससे उनमें भी राष्ट्र गौरव का भाव अक्षुण्ण रूप में बना रहें।

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही हिन्दू जीवन पद्धति व हमारी एकात्मता हमें एकता से आबद्ध रखती आयी है व रखेगी। सब हिन्दू उत्कृष्ट परम्परा युक्त एक संगठित राष्ट्र है। हमारा लक्ष्य हिन्दुओं का कोई संगठन खड़ा करना नहीं, वरन समस्त हिन्दुओं में संगठन स्थापित करना है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति आबाल–वृद्ध व मातृशक्ति पर्यन्त बिना किसी विभेद के पारस्परिक सद्भाव, सम्मान व एकजुटता पूर्ण जीवन जीयें।

आज, अब कहीं पर स्वल्प मात्रा में भी कोई हिन्दू मानव–मानव में भेद नहीं करें। सम्पूर्ण हिन्दू समाज पूर्ण समरस होकर अभेद्य एकता युक्त हिन्दू राष्ट्र का अंगभूत रहे, यह सर्वाधिक आवश्यक है। हम सभी स्वयंसेवकों का यहीं परम लक्ष्य होना अनिवार्य है।

लेखक की लघु पुस्तिकाएं

1. स्वदेशी
2. आर्थिक वैश्वीकरण : बाहरी दबाव जन्य रीतिनीति
3. आर्थिक वैश्वीकरण : वैश्विक षडयंत्र की रीतिनीति
4. स्वदेशी का शंखनाद
5. विश्व व्यापार संगठन
6. वैश्विक आर्थिक संकट : कारण व समाधान
7. Dis - Investment
8. चीन एक सुरक्षा संकट
9. Reasons of Global Meltdown & Lessons for India
10. फुटकर व्यापार में विदेशी पूंजी निवेश
11. FDI in Insurance
12. Chinese Agression
13. विकास की भारतीय अवधारणा
14. Nuclear Programme of India
15. मेड बाई इण्डिया
16. एकात्म मानव दर्शन
17. Solar Power Need for
18. सौर ऊर्जा – तकनीकी राष्ट्रवाद की प्रासंगिकता

लेखक द्वारा लिखित स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरीय पाठ्य पुस्तकें

1. प्रबंध
2. प्रबन्ध व संगठन व्यवहार
3. व्यावसायिक सन्नियम
4. प्रतिभूति विनियम एवं वित्तीय बाजार
5. कंपनी अधिनियम
6. व्यावसायिक वातावरण
7. उद्यमिता
8. अन्तर्राष्ट्रीय विपणन
9. व्यावसायिक संचार
10. औद्योगिक एवं व्यापारिक सन्नियम

मूल्य : रु. 5/–

View publication stats